रचनाकार

मूल रूप से मैथिली के लेखक श्री कामेश्वर चौधरी का यह प्रथम हिंदी काव्य-संग्रह उनके गहन अनुभव, संवेदना और जीवन-दर्शन का अद्भुत संगम है। उनकी रचनाओं में ग्राम्य जीवन की सादगी, मानव-संबंधों की ऊष्मा और समाज के प्रति गहरी संवेदना स्पष्ट झलकती है। 'टेंडरम-टेंडरम' जैसी कविताएँ जहाँ सरकारी तंत्र की विसंगतियों को उजागर करती हैं, वहीं 'प्रकृति', 'व्यथा' और 'स्मृतियाँ' जैसी रचनाएँ कवि के कोमल, भावप्रवण हृदय की झलक देती हैं। कवि के गीत और कविताएँ जीवन के गहन अर्थों को उजागर करते हुए पाठकों को आत्मान्वेषण की दिशा में प्रेरित करती हैं। यह काव्य-संग्रह अपने शीर्षक के अनुरूप, अनुभवों की मंजरियों से सुसज्जित एक 'खिली हुई पंखुड़ी' के समान है—सुगंधित, जीवंत और हृदयस्पर्शी।

श्री कामेश्वर चौधरी, बिहार के मधुबनी जिले के मेघौल गाँव के मूल निवासी हैं। भारत सरकार के रेल विभाग में उच्च पद पर कार्यरत रहते हुए भी उन्होंने समाज की नब्ज को गहराई से महसूस किया और अपनी कविताओं के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को स्वर दिया। अपनी संवेदनशील दृष्टि, सरल भाषा और सच्ची अनुभूति के कारण वे अपने प्रथम काव्य-संकलन के साथ समकालीन हिंदी काव्य-जगत में एक सशक्त और विशिष्ट स्थान के अधिकारी बनेंगे, ऐसा विश्वास है। मैथिली भाषा में उनका काव्य-संग्रह 'सनेस' पहले ही पाठकों की सराहना प्राप्त कर चुका है। समाज के वंचित और कमजोर वर्गों के उत्थान के प्रति उनका समर्पण, मानवीय मूल्यों में उनकी आस्था और सृजन के प्रति उनका प्रेम उन्हें एक संवेदनशील और विचारशील कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

'पंखुड़ी अब खिल गई है' उनके सृजन-संसार की नई मंजिल है—जहाँ अनुभूतियाँ शब्द बनती हैं और शब्द भावनाओं का संगीत रचते हैं।

इंडिका इन्फोमीडिया
नई दिल्ली

ISBN 978-81-988318-9-7
9 788198 831897
मूल्य : ₹ 300/-

पंखुड़ी अब खिल गई है

कामेश्वर चौधरी

पंखुड़ी अब खिल गई है

(कविता-संग्रह)

कामेश्वर चौधरी

पंखुड़ी अब खिल गई है

पंखुड़ी अब खिल गई है

कामेश्वर चौधरी

इंडिका इन्फोमीडिया
जनकपुरी, नई दिल्ली–110 058

ISBN : 978-81-988318-9-7

पंखुड़ी अब खिल गई है

लेखक : कामेश्वर चौधरी

सर्वाधिकार © : लेखक

संपर्क :
28 सी, एवरशाइन अपार्टमेंट, डी ब्लॉक,
विकासपुरी, नई दिल्ली–110018
मोबा. : 97172 45666
ई-मेल : cmmsnr@gmail.com, kameshwarc1952@gmail.com

प्रकाशक
इंडिका इन्फोमीडिया
डब्ल्यू.जेड. 43ए, गली नं. 1, लाजवंती गार्डेन, नई दिल्ली–110046
मोबा. : 9350951555; ई-मेल : indicainfo@gmail.com

प्रथम संस्करण : 2025
मूल्य : ₹ 300/-

आवरण
इंडिका इन्फोमीडिया

मुद्रक
एक्सट्रीम ऑफिस एड्स प्रा. लि., नांगल राया, जनकपुरी, नई दिल्ली–110046

Pankhudi Ab Khil Gayee Hai; A Book of Poetries in Hindi
by Kameshwar Choudhary
Price: ₹ 300/-

समर्पित

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
के
सहपाठियों को

अनुक्रमणिका

क. भक्ति खंड **1-11**

1. गणेश वंदना 1
2. सरस्वती वंदना 2
3. राम का स्वागत 4
4. कब आओगे राम 5
5. हे बंसीधर 7
6. कविकोकिल की याद 8
7. ओ काशी 10

ख. भाव खंड **12-31**

8. तमसो मा ज्योतिर्गमय 12
9. गीत से भर दो गगन को 14
10. गीत गाता जा रहा हूँ 15
11. गीत मैं किसको सुनाऊँ 16
12. इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं 17
13. अनुभूति 19
14. मुहब्बत 20
15. घोंसला 22
16. दीप बन जलता रहूँगा 24
17. पंखुड़ी अब खिल गई है 26
18. नदी और सागर 28
19. मैं व्यथा की वेदना हूँ 30
20. भटक रहे है राम हमारे 31

ग. विचार खंड **32-57**
21. गाँव की याद 32
22. नीतियों की नियति 34
23. यह सरकार कैसी है 36
24. टेंडरम-टेंडरम 38
25. मैं दुनिया को देख रहा हूँ 39
26. ब्लैक मनी 41
27. कोसी का कहर 42
28. अरुणाचल की अरुणिमा 44
29. बाजार 46
30. सफर 48
31. अधीनता के स्वर 50
32. एक थी दमयंती 51
33. कस्तूरी 53
34. हवा का रुख 55
35. जलवायु 56

घ. बाल खंड **58-74**
36. माँ का स्नेह 58
37. सागर तू मत रोना 59
38. पुरुषार्थ 61
39. उच्छ्वास 63
40. लक्ष्य, मेरा चाँद 64
41. बेटी की पुकार 66
42. बिस्वजीत का अर्धशतक 68
43. पानी की धारा 69
44. किसने यह स्वर्ग उठा लाया 70
45. शरद की वह रात 71
46. नमन हिंदी को 73

प्रस्तावना

चार दशकों से अधिक समय तक भारत सरकार की सेवा में निष्ठापूर्वक कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त कवि कामेश्वर चौधरी का यह प्रथम कविता-संग्रह, 'पंखुड़ी अब खिल गई है', उनके अनुभव, अनुभूति, संवेदना और आशा का प्रतीक बनकर उभरता है। यदि उन्हें 'अनुभव-अरण्य' की संज्ञा दी जाए—जहाँ अनुभव की तपती आँच में परखा गया स्वर्ण अपनी आभा से दमकता है—तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कवि का हिंदी में लिखा यह प्रथम कविता-संग्रह है, जो अपने शीर्षक नाम 'पंखुड़ी अब खिल गई है' के अनुरूप मूलतः आशा और उम्मीदों से लबालब औ' परिपूरित है।

'जगत के सारे थपेड़े/राह थे अनजान मेरे
मैं धरा को ढूँढ़ता/अविराम बढ़ता जा रहा हूँ
गीत गाता जा रहा हूँ।

यहाँ उनकी आशावादिता के साथ-साथ उत्साही मनोवृत्ति भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है—

'चरैवेति, चरैवेति, मैं सदा चलता रहूँगा
घर घिरा हो तिमिर से जब, दीप बन जलता रहूँगा।'

सरकारी नौकरी (रेल विभाग) में एक ऊँचे ओहदे पर रहने के क्रम में स्वाभाविक ही कवि ने सरकारी तंत्र की सारी ऊँच-नीच, भ्रष्टाचार आदि को अपनी नजरों से देखा, समझा और अनुभूत किया है। सो, उनकी इन प्रस्तुत कविताओं में भी उसकी गूँज और अनुगूँज न केवल स्पष्टता से, वरन प्रबलता से भी प्रतिध्वनित हुई है। इन पंक्तियों को जरा देखें—

'आगतम् टेंडरम, स्वागतम् टेंडरम
रेल के दफ्तरों में टेंडरम-टेंडरम

ध्यान में टेंडरम, स्वप्न में टेंडरम
जागते टेंडरम, भागते टेंडरम।' *(कविता–टेंडरम-टेंडरम)*

इन कविता-पंक्तियों में सरकारी तंत्र में टेंडर के माध्यम से भ्रष्टाचार की परतें उधड़ती दिखाई पड़ती हैं। यहाँ कवि के अंदर का व्यंग्यकार भी प्रखरता से दिखाई पड़ता है। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी सरकारी दफ्तर की यादें कवि को गहराई से सताती हैं, जिसके स्मृतिचित्र अत्यंत सजीवता के साथ उकेरे गए हैं–

'छूट गया सरकारी दफ्तर
हो तैयार सुबह ही उठकर
कुर्सी-टेबुल याद आ रहा
चाय-चक्र में बैठे जमकर।'

रचनाकार यदि कवि हो और उसके अंदर गीत, राग, लास्य, सौंदर्य, स्मृति, दुःख, पीड़ा, व्यथा और नॉस्टैल्जिया न हो, यह कैसे संभव है! कवि अपने अतीत, अपनी यादों से दूर नहीं हो पा रहा। एक नॉस्टैल्जिक कवि ही तो ऐसा कह सकता है–

'कैसे मैं इतिहास भुला दूँ
धरती और आकाश भुला हूँ
जिन लोगों के साथ जिया हूँ
उनका कैसे प्यार भुला दूँ।' *(स्मृतियाँ)*

प्रकृति के प्रति उनकी निःस्वार्थ स्नेह-भावना इस पंक्ति में झलकती है–

प्रकृति की गोद में मन मेरा झूल गया। *(प्रकृति)*

साथ ही, वे मानव-मन की वेदना और पीड़ा को भी अभिव्यक्त करते हैं–

मैं व्यथा की वेदना हूँ, बात मैं कैसे सुनाऊँ? *(व्यथा)*
तमस है चारों तरफ दीवार बन
कौन लाएगा दिया उस छोड़ में। *(पीड़ा)*

कवि साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्ध और धनवान है। वह सर्वग्राही और सर्वदृष्टिसंपन्न भी है। उसके विचारों और दृष्टि के विस्तृत वितान तले अनेक विषय, वस्तु और भाव विचरण करते हैं। कवि की दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं, न ही अदृष्ट है। जब वह 'बाजार' को देखता है, तो कह उठता है–

'यहाँ सब चीज बिकती है
तेरे दम को परखती है
मुझे भी लौटना था
लौट आया देखकर मेला।'

कवि जब लोक की चिंता में डूबा होता है तभी कह पाता है–

'सब अपनी गति से चल रहा है
अपनी आकांक्षाओं को तलाशते
नियंताओं के अहंकार की पुष्टि
नहीं जाती तो सिर्फ सड़क और गलियों में
घूमती, प्रजा पर दृष्टि।'

कवि जब बाढ़-पीड़ितों की पीड़ा से ग्रस्त होता है तो 'कोसी का कहर' लिखता है, जब अध्यात्म में डूबता है तो 'ओ काशी!' लिखता है, अपने 'पूर्वज कवि' को याद करते हुए 'कवि कोकिल की याद में' लिखता है (हे कवि कोकिल, हे विद्यापति)। वह 'अरुणाचल की अरुणिमा' भी लिखता है, और 'माँ का स्नेह' भी। दामाद 'विश्वजीत' की 50वीं वर्षगाँठ पर उसे कविता के माध्यम से स्नेहिल आशीष देता है। गणेश और सरस्वती-वंदना उनकी आध्यात्मिक सन्नद्धता को प्रतिबिंबित करती है।

कुल मिलाकर, समय, समाज और राष्ट्र-सजग इस कवि की विचार-दृष्टि का फैलाव और विस्तार असीम है। उनके विचार-सिंचन से साहित्य की उपज अत्यंत समृद्ध एवं विविधतापूर्ण हुई है। कवि की घुच्ची आँखों में नागार्जुन के विचार-वैशिष्ट्य की तासीर है तो उसकी कलम में दिनकर-सा तूणीर और तीर भी है।

इस संग्रह के माध्यम से कवि ने अपने व्यक्तित्व की उन गहराइयों को उजागर किया है, जहाँ जीवन की अनेक अनुभूतियाँ–पीड़ा, आशा, स्मृति, व्यथा, आध्यात्मिक अनुभूति और सामाजिक व्यंग्य आदि–सहज भाव से प्रवाहित होती हैं। यह एक ऐसी काव्य-यात्रा है, जो पाठकों को अपने भीतर झाँकने के लिए सहज ही प्रेरित करती है।

– दीपक कुमार गुप्ता
हिंदी संपादक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

प्राक्कथन

जिजीविषा, कर्म और ज्ञान जब लयबद्ध होते हैं, तो कविता का उदय होता है। जीवन के क्षणों की भावाभिव्यक्ति जब अंतर्मन से निकलकर बाह्य जगत में विलीन होने को प्रवृत्त होती है, तभी कविता प्रस्फुटित होती है। कंठ-ध्वनि में उमंग भरने की प्रक्रिया काव्य को गीत बना देती है, और कविता गेय होकर अमरत्व पा लेती है। शायद इसी कारण गेय काव्य की अक्षुण्णता उसे गद्य से कहीं आगे निरंतर स्पंदित करती रहती है।

सत्य, शिव और सुंदर की सच्ची अभिव्यक्ति प्रेम में ही निहित है, जिसे कविता अपने गेय रूप में परिष्कृत करती है। इस प्रकार कविता और गीत मानव जीवन की उत्कर्ष भावनाओं के प्रतीक बन जाते हैं। कभी-कभी यही गेय काव्य साहित्यकार को गद्य रचना तक पहुँचने की सीढ़ी भी प्रदान करता है।

संस्कृत, हिंदी और अन्य भाषाओं की परंपरा में 'रामायण', श्रीकृष्ण का 'भ्रमर गीत' और 'गोपी गीत' जितना आनंदित करते हैं, उतना ही कालिदास, जयदेव और विद्यापति की रचनाएँ भी हृदय को छूती हैं। आधुनिक काल में कवि दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त और शिवमंगल सिंह 'सुमन' जैसे रचनाकारों की रचनाएँ हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करती रही हैं। वहीं नीरज, शकील, जयपुरी और आजमी के गीत लबों पर सुर की अनोखी शक्ति भरते हैं।

कई वर्षों तक सुषुप्त पड़ी मेरी कविताएँ जब अवकाश प्राप्त जीवन के खालीपन में पुनः अवतरित होने लगीं, तो अनुभव हुआ कि इन्हें देश-दुनिया तक पहुँचाना चाहिए। इसी क्रम में मेरी कविताओं और गीतों का यह स्वरूप आकार लेने लगा।

मेरी मातृभाषा मैथिली में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'सनेस' के पश्चात जीवन-यात्रा के संस्मरणों ने पाठकों की प्रतिक्रियाओं से अभिभूत किया। अब राजभाषा हिंदी के

व्यापक फलक पर इन्हें उद्‌भासित करने की इच्छा मेरे मित्रों, सहकर्मियों और शुभचिंतकों के प्रेरक उद्‌गारों से प्रबल हुई। उसी क्रम में प्रस्तुत है यह काव्य-संग्रह 'पंखुड़ी अब खिल गई है'। इन कविताओं में कहीं भक्ति है तो कहीं सहज प्राकृत प्रेम। कहीं मानव-संबंधों का मनोविज्ञान है तो कहीं जीवन-दर्शन की तलाश।

इन कविताओं और गीतों को पुस्तकाकार रूप देने में इंडिका इन्फोमीडिया के संपादक-प्रकाशक श्री अरविन्द गुप्ता निस्संदेह आभार के पात्र हैं जिनसे मुझे संपादकीय सुझाव व सहयोग मिलते रहे हैं। लिखने की प्रेरणा देते रहे मेरे स्वसुर तथा मैथिली के कालजयी रचनाकार स्वर्गीय केदारनाथ चौधरी (केदार बाबू) को श्रद्धांजलि एवं नमन। उन्होंने ही मेरा परिचय अरविन्द जी से कराया था।

मेरे गुरु, पटना विश्वविद्यालय से अवकाशप्राप्त प्रख्यात विद्वान डॉ. श्री इंद्रकांत झा, जिन्हें बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा 'मैथिली के रवीन्द्र' के रूप में सम्मानित किया गया, उन्हें सादर नमन। मेरे मित्र एवं उपन्यासकार श्री रबीन्द्र नारायण मिश्र भी लेखन-प्रेरणा के लिए विशेष धन्यवाद के अधिकारी हैं।

संपादन में अपनी विद्वत्ता से मार्गदर्शन करने वाले संस्कृत के आचार्य श्री रामानुज और टंकण में सहयोग देने वाली श्रीमती शालिनी गेरा का आभार।

गृह-सहयोग निभाते हुए हर समय मुझे रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करने वाली मेरी धर्मपत्नी 'अंजीरा' को धन्यवाद दिए बिना यह प्राक्कथन पूर्ण नहीं हो सकता।

मुझे विश्वास है कि यह काव्य-संग्रह प्रिय पाठकों तक मेरी भावनाओं को पहुँचाएगा और उनका स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त करेगा।

भवदीय

– कामेश्वर चौधरी

गणेश-वंदना

हे गणेश, गणनाथ विनायक,
स्वास्थ्य, शांति, समृद्धि, सुखदायक
वक्रतुंड, गजबदन सुगायक
लंबोदर, मोदकप्रिय नायक।

गौरी-शिव पालित, प्रथम पूज्य
विघ्नों के हरता, सकल, दिव्य
हैं एकदंत और चार हस्त
शोभित स्वरूप, लावण्य मस्त।

है भाल चंद्रमा सजी हुई
हैं बुद्धि-विवेक से मँजी हुई;
मूषक रथ पर हो तुम सवार
तुम तीव्र लेख के सूत्रधार।

हो महादेव के अंक लगे
जय-जय गणेश, प्रणमामि तुझे।
मुझको प्रकाश से आलोकित
कर दो, मैं करूँ नमामि तुझे।

सरस्वती-वंदना

हंसवाहिनी, कमलवासिनी
देवि माँ हे शारदे!
वादिनी वीणा की झंकृत
स्वर की जननी शारदे!

श्वेत वस्त्रा, शुभ्र आसन
श्वेत निष्ठ विचार धारण
जलद ताल मृणाल जोड़े
दिव्यता दे शारदे।

ज्ञान की दरिया बहा दो
ज्योति जीवन में जला दो
मैं करूँ रचना जगत में
रम्य रस से मन रमा दो।

मैं तुझे अर्पण करूँ
पुष्पांजलि से कर समर्पण
छवि निहारूँ हाथ में ले
शुभ्र, सुंदर विश्व-दर्शन।

मैं परा अज्ञानता में
निशा के घनघोर वन में
प्रार्थना करता हूँ तेरी,
अंत कर अज्ञान मेरी।

राम का स्वागत

राम की रमणीय नगरी में करें हम आरती
विश्व स्पंदित हुआ और खिल उठी है भारती।

तुम हमारी आस्था के दीप हो रघुराम जी
कल्पना करता रहा तेरे ही सुंदर धाम की
तुम रहे अवरुद्ध कितने साल तक
छूट साथ गई थी प्रिय श्री जानकी।

भारती के पुत्र-पुत्री ने है कितना तप किया
समय का बलिदान देकर न्याय माँगा, जय किया
तब कहीं जाकर अयोध्या धाम पुलकित हो उठा
प्राण तेरे में प्रतिष्ठित हो गया सम्मान की।

तुमने मर्यादा दिखा सम्मान की, पुरुषार्थ की
भारती के पुत्र ने संघर्ष की तेरे लिए
आ बसो परिवार सारे, मिल बसे फिर जानकी
विश्व को दो प्रेरणा, हे राम रथ के सारथी।

कब आओगे राम मेरे

कब आओगे राम मेरे
बैठा हूँ आस लगा तेरी।
तुम भूल गए अभिराम मेरे
बैठा हूँ आस लगा तेरी।

क्या याद तुझे है जन्मभूमि
भारत की धरती पर उभरी
जिस सरजू तट पर तुम खेले
बन आज अयोध्या फिर उतरी।

तुमने इतिहास बना डाला,
अपनी मर्यादा के बल की
गाते हैं गीत तुम्हारे हम
विनती तेरी महिमा तेरी।

मँझधार पड़ी मेरी नैया
मैं ढूँढ़ रहा सीता मैया
हनुमान सहित कब आओगे
हँसते, खिलते चारों भैया।

हम राम-राज को तरस रहे
तपते-जलते विश्वास भरे
पथ से नयनों को हटा सकूँ
कैसे यह नगर बसा तेरी
कब आओगे राम मेरे?

हे बंसीधर

हे बंसीधर, नटवर नागर
गोपाल, जगत के पालक हो।
गोवर्धन तेरी उँगली पर
दुनिया की नियति के चालक हो।

तुम वृंदावन के हो रसिया
हो रास रचाए उपवन में,
गोपी गीतों से आनंदित,
राधा की नाच बसे मन में।

मुरली की धुन मन मोह लिए,
रस रास रमण रग राग उठे,
बिरहा की धुन ब्रज वृंदावन,
जब दूर थी राधा से मोहन।

मैं प्रेम भाव कैसे लाऊँ,
तेरे चरणों में गति पाऊँ;
गोविंद, विष्णु और राम तुम्हीं,
मैं तेरे लय में खो जाऊँ।
जय हे जय हे गोविंद हरे।

कवि कोकिल की याद में

हे कवि कोकिल, हे विद्यापति,
हे वैरागी, मैं नमन करूँ।
बीते अतीत की सुर-लहरी,
मैं गीत-सुधा का श्रवण करूँ।

'बिस्फी' का गाँव था धन्य हुआ
तूने कुल में जब जन्म लिया;
हरिसिंह देव के छाँह तले
कामेश्वर को जब राज मिले।

'कलप बीरिछ तर जनम गमाओल
धथुरा तर अब बासे'
ओइनी आकर राजद्वार में
शिव सिंह संग निवासे।

लखिमा का अनुराग मिलाकर,
रस-श्रृंगार का साथ दिलाकर,
यौवन की गाथा थी गाई,
'चानन भेल विषम सर' पाई।

'मोरा रे अँगनमा चानन के गछिया,
ता चढ़ि कुचरे काग रे,
सोना चोंच मढ़ा देब आई,
जौं पिया आओता आजु रे।'

राधा-कृष्ण प्रेम धुन गाए
माधव के मन को ललचाए;
प्रिय पत्र के गाते आस,
'के पतिया लए जाएत रे मोरा पिअतम पास'।

'कखन हरब दुःख मोर हे भोलेनाथ'
गाते रहे थे शिव के साथ
मशानकर गंगा साथ चल रहे,
दास बने कैसे हे नाथ।

लिख दी तूने राज-काज की
गाथा अपने देश राज की,
कीर्तिलता और कीर्ति-पताका
भू परिक्रमण आओर पुरुष परीक्षा।

व्योम भरा तेरे गीतों से
मिथिला को सम्मान दिलाया;
जहाँ रहे, तुम प्रेमभक्ति में,
अमृत-रस सबको पिलवाया।

ओ काशी

ओ काशी, ओ काशी, ओ काशी!
तेरे कण-कण में बसते हैं घट-घट वासी।
तूने जो नगर बसा डाला इस धरती पर
आकर ठहरे हैं विश्वनाथ, कैलास निवासी। ओ काशी...

यह ज्ञान नगर, गंगा तट पर
वरुणा और अस्सी के बीच शहर
माँ सरस्वती की धरती है
दोनों की वाणी बनी अमर
जन-जन के लिए सब ढूँढ़ रही
विज्ञान ज्ञान की है प्यासी। ओ काशी...

यह महामना की कर्मभूमि
संपूर्णानंद की प्रीति भरी
काशी का हिंदू विश्वविद्यालय
है विश्व-पटल पर अटल खड़ी।
धरती, जल, गगन, पवन, पावक
संगीत-गीत सब है दासी। ओ काशी...

गंगा, गैया, गीता सबकी
गायत्री की गाथा न्यारी
यह हरिश्चंद्र की तपोभूमि
तुलसी, कबीर की मृद् प्यारी
तूने हमको है ज्ञान दिया
मैं हूँ विवेक का अभिलाषी। ओ काशी...

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ढूँढ़ता आकाश जिसको, बादलों ने घेर ली है
दूर चारों ओर चादर, क्षितिज ने जो ओढ़ ली है;
इन सुरंगों का न कोई अंत दिखता
राह के पत्थर को मैंने तोड़ दी है।

देस-दुनिया को समझने जा रहा हूँ
ज्ञान के आँगन भटकने जा रहा हूँ;
दृष्टि उस विज्ञान की लेकर बढ़ा
सदियों से ही जिसको मैं गुनता जा रहा हूँ।

व्यक्ति और समाज बढ़ते जा रहे हैं
नित नए सिद्धांत गढ़ते जा रहे हैं;
पर न रुकता है कहीं अन्याय है
भय प्रताड़ित लोग सब असहाय हैं।

ढूँढ़ता आनंद कैसा शोर में
पर रहा कोहरा घना इस भोर में;
तमस है चारों तरफ दीवार बन
कौन लाएगा दिया उस छोर में।

'असतो मा सद्गमय' की सीख दे
'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की भीख दे;
'सुप्तो मा जाग्रत' करो की लीख दे
गुरु मिले ऐसे, जो गाड़ी झीक दे।

लापता सूरज हुआ इस धरा से
चाँद ने भी राह अपनी मोड़ ली है;
इन सुरंगों का न कोई अंत दिखता
राह के पत्थर को मैंने तोड़ दी है।

गीत से भर दो गगन को

गीत से भर दो गगन को
ताकि दुनिया झूम जाए;
शोर में डूबी हवा की
साँस का रुख घूम जाए।

नाद जो सोयी हुई है
वाद जो खोयी हुई है;
नाद-अंतर्नाद बनकर
इन लबों को चूम जाए।

बेबसी जो रो रही है
बेवफाई सो रही है;
नीर नयनों से निकलकर
इस धरा पर धूम लाए।

रोशनी जो खिल रही है
शिखा बनकर हिल रही है;
दीप हर दिल में जला दो
मुस्करा मासूम जाए।

गीत गाता जा रहा हूँ

शांत मन विश्रांत वन में
स्वर-लहर लहरा रहा हूँ
गीत गाता जा रहा हूँ।

जगत के सारे थपेड़े
राह थे अनजान मेरे
मैं धरा को ढूँढ़ता
अविराम बढ़ता जा रहा हूँ।
गीत गाता जा रहा हूँ।

साथ के साथी घनेरे
छोड़ते सब साथ मेरे
मैं निरा असहाय-सा
अभिशप्त ठोकर खा रहा हूँ
गीत गाता जा रहा हूँ।

गीत मैं किसको सुनाऊँ

गीत मैं किसको सुनाऊँ?
सामने कोई नहीं हो
सहचरी सोई कहीं हो
तरु भरे वीरान जंगल में खड़ा
किसको बुलाऊँ?
गीत मैं...

कृष्ण की मुरली पड़ी है
ताल सोई-सी पड़ी है
कान बहरे हो चुके हैं
तीर स्वर का क्या चलाऊँ?
गीत मैं...

इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं

सब लोग कह रहे हैं, मिथ्या है जिंदगी
गम से भरा घड़ा है, माया है जिंदगी
लेकिन क्षणों की प्यार को कैसे भुला दूँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

सबने दिखाए राह और मैं ढूँढ़ता रहा
तेरी नजर कहीं, मगर मैं घूरता रहा
बीते दिनों की याद को कैसे भुला दूँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

सागर किनारे बैठ बालू का बनाया ढेर
पैरों को ढक बना दिया घर का बड़ा मुंडेर
लहरें बहा दीं जिन घरों को, कैसे बचाऊँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

पग-पग मिला एहसास गमों का, मैं क्या करूँ
चलता गया हूँ राह पर, बैठे भी मैं क्या करूँ
जिससे मिला है प्यार उसे कैसे भुला दूँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

जो बाग मैंने थे लगाए, फूल खिल गए
पेड़ों पर मंजरें खिलीं और फल निकल गए
सब बँट गए हैं डाल पे, कैसे मिलाऊँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

छोटे-से पेड़ देख, घरौंदा बना लिया
तिनकों से सहारा मिला, आसरा बना लिया
बच्चों ने छोड़ा घोंसला, कैसे भुला दूँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

सेजों से लंबी चटाई, सपनों में था बीना
जो भी लुटा सका, लुटाकर भी ना गिना
जैसी मिली यह जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं
इतनी हसीन जिंदगी, कैसे भुला दूँ मैं?

अनुभूति

अनुभूति बड़ी अच्छी लगती
तेरे घर में,
मन लग जाता मेरा अपने
परमेश्वर में।

तेरे आँगन में आकर, मैं तो भूल गया
प्रकृति की गोद में मेरा मन है झूल गया,
इतिहास रहा पीछे, भूगोल पैरों तले
उठ गई जो ज्योति अंदर में,
जो अब बुझ न सके।

आशा की चाँदनी-सा प्रकाश,
इस अंबर में
अनुभूति बड़ी अच्छी लगती
अपने घर में।

मुहब्बत

मुझे मेरे मुहब्बत का, कभी इकरार न आया
मुझे तेरी मुहब्बत से कभी तकरार न आया
रहा मैं वादियों में ढूँढ़ता, सर को पटक करके
मुझे अपनी मुहब्बत का कभी इजहार न आया।

दिखा था माँग सिंदूरी
झलकती माथ की बिंदिया
नयन अलसा गई जैसे
पिला दी जाम थीं सखियाँ
सिसकता मैं रहा, लेकिन
कभी चीत्कार न आया
मुझे अपनी मुहब्बत का...

न जाना भेद अपने और
जो नादान-सा बनकर
कभी था रूठता, था जूझता
दीवार-सा बनकर
तुम्हारे लफ्ज सुनने से कभी इनकार न आया
मुझे अपनी मुहब्बत का...

अभी है शाम ढलने को
तो आई याद दिनभर की
हुए ओझल हैं आँखों से
करूँ फरियाद किस दर की।
तू मुझको परखती थी, मुझे एतबार न आया
मुझे अपनी मुहब्बत का...

घोंसला

मैं पड़ा हूँ घोंसले में
जान बिखड़े हर नगर।
किस तरह बाँटू, उमड़ता
प्यार का प्याला मगर।

मैं रहा चुनता धरा पर,
पेड़, तिनके और पत्ते
आसमाँ से ले उतारा,
हवा, तारे, चाँद चलते।

घोंसले में प्राण डाला,
प्यार से दे दीप-बाती,
जिंदगी कैसे खुशी से
प्यार की थी गीत गाती।

आज सूना पड़ गया है
घोंसला मेरा निराला
प्राण तो सारे उड़े हैं
जाने डाका किसने डाला।

मापता मैं रह गया
धरती के चलते हर डगर
वो उड़े आकाश में,
मैं ढूँढ़ता रहता मगर...

दीप बन जलता रहूँगा

चरैवेति, चरैवेति,
मैं सदा चलता रहूँगा
घर घिरा हो तिमिर से जब,
दीप बन जलता रहूँगा।

घेर ली दीवार ने, पथ
रोक सूरज-चाँद का भी
शोर वन में और सोते,
शेर जैसे माँद का भी
बर्फ से ढक जाए धरती,
मैं स्वतः गलता रहूँगा
दीप बन जलता रहूँगा।

जो लगाए गले मुझको,
मैं उसे मरने न दूँगा
छाइयों-परछाइयों का
अनुशरण करने न दूँगा
जोरकर इन शिखाओं की
पंक्ति में जलता रहूँगा
दीप बन जलता रहूँगा।

तुम बने हो देश-दीपक
ओस बादल और तारे,
रात चंदा, दिन का सूरज
और भर नक्षत्र सारे
मैं धरित्री को सँवारूँ
और खुद ढलता रहूँगा
दीप बन जलता रहूँगा।

चल-अचल का भेद तो
मैं न कुछ भी जान पाया
काल और अकाल का अंतर
न समझा, त्राण पाया
होंठ पर मुस्कान तेरे
देख मैं फलता रहूँगा
दीप बन जलता रहूँगा।

पंखुड़ी अब खिल गई है

नीलिमा आकाश की ओढ़े हुए
लिपट धरती पर कुहासे में पड़े,
डाल पर पत्तों की झुरमुट में खड़े
यह गुलाबी रंग है बोझिल हुई
पंखुड़ी थी एक, जो वह खिल गई है।

डालियाँ हैं मचलती अब
हरित पौधे उछलती अब
हर तने पर मंजरी है
सिहकती बहती हवा से मिल गई है।
पंखुड़ी थी एक...

रूप का सौंदर्य लेकर,
प्रस्फुटित ऐश्वर्य लेकर
अर्थ जीने का तलाशे
ईश पर निज शीश देकर हिल गई है।
पंखुड़ी थी एक...

सृष्टि की संभावना से
दृष्टि की अवधारणा से
भाव-विह्वल भावना से
थाल पूजा के सँभाले
भक्त के दिल बस गई है।
पंखुड़ी थी एक...

नदी और सागर

शैल-कानन से निकलती
धरा पर स्वच्छंद चलती
जा रही मिलने कहीं
उन्मत्त मन करती उजागर
दूर कितना शांत सागर।

नदी क्या है, एक गति है
बद्ध शासन में सुमति है
राह के रोड़े कुचलकर
निरंतरता की नियति है
निर्मला धारा सँजोए
पूछती है प्रशांत का घर
दूर कितना शांत सागर।

निकलती जिस देश से यह
प्लाविता परिवेश है वह
तृप्ति करती जीव तरु को
प्रकृति की अनमोल है वर
कब तलक लुटती-बिलखती
रहूँगी सब कुछ लुटाकर
दूर कितना शांत सागर।

सुध कहाँ मुझको है अपनी
तुमने कितना रौंद डाला
सभ्यता का विष मिलाकर
फिर भी मैं हूँ स्वच्छ बाला
सींचती, सिंगार की निर्बाध
बन भरती हूँ गागर
दूर कितना शांत सागर।

देव ने भेजा मुझे
तेरे लिए सुध न सुझे
वंदना मेरे सुरों की
है कहाँ फुरसत तुझे
याद मैं करती रहूँगी
देव नटवर और नागर
दूर कितना शांत सागर।

मेरे लिए न सुबह प्यारा
शाम का ढलता नजारा
अनवरत चलती रहूँगी
न कहीं विश्राम न्यारा
निर्मला तरला बनी, अविरल चलूँ
मैं शांति के घर
दूर कितना शांत सागर।

मैं व्यथा की वेदना हूँ

मैं व्यथा की वेदना हूँ, बात मैं कैसे सुनाऊँ?

शोर है आकाश में, जब लोग बहरे हो गए हैं
कंठ स्वर से गरजते, आवाज गहरे हो गए हैं
वृत्ति ध्वनि की बन तरंगें, हवा में उड़ जा रही हैं
नाद अंतः से उठी है, मैं इसे किसको बताऊँ?
मैं विरह की वेदना हूँ, बात मैं कैसे सुनाऊँ?

वाङ्मय सब देख ली है, पढ़ लिया इतिहास सारा,
पूछता कोई नहीं है शांति अपना ही सहारा
आँसुओं को देखकर जब, हँस पड़ेंगे जगत सारे
वेदना के वेग को क्यों व्यंग्य होकर मैं बढ़ाऊँ?
मैं विरह की वेदना हूँ, बात मैं कैसे सुनाऊँ?

भटक रहे हैं राम हमारे

जन्म लिये अपनी धरती पर
पाल-पोस अरमान हमारे
कहाँ गए पढ़-लिखकर सारे
भटक रहे हैं राम हमारे?

हमने वसुधा को जाना था
सबको अपना ही माना था
जान कहाँ पाया था कुछ भी
चले जाएँगे राम हमारे।

चकाचौंध धरती पर फैले
रंग-बिरंगे, लोक सुनहरे
सब की सेवा में रत होकर
छोड़ गए हैं राम हमारे।

अपनी छोटी-सी जमीन थी
लेकिन रात में सुखी नींद थी
अब तो नींद उड़ी रहती है
कब आओगे राम हमारे?

गाँव की याद

कैसे मैं इतिहास भुला दूँ
धरती और आकाश भुला दूँ
जिन लोगों के साथ जिया हूँ
उनका कैसे प्यार भुला दूँ
कैसे मैं इतिहास...

गाँव छोड़ जिस दिन निकला था
माँ की ममता साथ मिला था
चाची, दादी, नानी की
यादों का क्या एहसास भुला दूँ
कैसे मैं इतिहास...

परदेशी बन शहर आ गया
भटक-भटक घूमता रह गया
मगर, गाँव के आह्लादों का
कैसे मैं विश्वास भुला दूँ
कैसे मैं इतिहास...

मैं तो राही बन निकला था,
जीवन-पथ को ढूँढ़ रहा था,
खट्टे-मीठे अनुभव पाए
कैसे मैं एहसास भुला दूँ
कैसे मैं इतिहास...

नीतियों की नियति

नीतियाँ बनतीं,
बड़ी दीवारों के बीच
बड़े-बड़े विचारों के साथ,
बड़े पदों पर स्थापित व्यक्तियों के द्वारा
पिरोई जातीं, पुष्ट शब्दों में,
सरकारी संचिकाओं में,
टाँकी जाती अक्षराएँ
लगाई जाती मुहरें
श्रेष्ठ हस्ताक्षरों के बाद।

गजट में प्रवेश, एक अधिकार
छपे हुए अक्षरों का समूह
भेजा जाता निर्बाध तीर की तरह
देश-समाज के कोने-कोने तक
मगर, धरती पर लहलहाते धान
हल जोतकर, घर लौटे किसान
थका हुआ पागुर करता बैल
अपनी रफ्तार में सब चल रहा है।

कारखाने में जूझता श्रम-शक्ति,
कल्पना को मूर्ति में बदलते यंत्र
बाजार की आहट सुनते सामान
लुका-छिपी कर, ढूँढ़ते महलों का ध्यान
सब अपनी गति से चल रहा है
अपनी आकांक्षाओं को तलाशते
नियंताओं के अहंकार की पुष्टि
नहीं जाती तो सिर्फ सड़क और गलियों में
घूमती, प्रजा पर दृष्टि।

यह सरकार कैसी है

सुनहरे स्वप्न जो देखे
नहीं साकार हो पाए
उलझकर सब्जबागों में
भरी दरबार कैसी है
बढ़ी महँगाई, न बढ़ पाई
न मेहनत की ये मजदूरी
वसूली कर, करे मजबूर,
यह सरकार कैसी है?

बना है दीन, मन से हीन
रोती जा रही दुखिया
दलाली तंत्र में उनके
समाजों के बड़े मुखिया
गबन कर लोक धन इस देश की
दरकार कैसी है?
वसूली कर और मजबूर
यह सरकार कैसी है?

बना है आततायी वह
जिसे हम शक्ति से सींचे
नहीं जो देखता है भूलकर भी
वह कभी नीचे
हवा छूने चली, अंबर की यह आकार कैसी है
वसूली कर करे मजबूर
यह सरकार कैसी है?

विलासी रंग में डूबे हुए
आकंठ सेवक जन
प्रतिष्ठाहीन प्रतिभा,
बिलखती है लोक लोकायन
मजूरी कर भरे हैं देश की खाली हुई झोली
सहेगी देश अब आगे नहीं
ललकार कैसी है
वसूली कर करे मजबूर
यह सरकार कैसी है?

टेंडरम-टेंडरम

आगतम् टेंडरम, स्वागतम् टेंडरम
रेल के दफ्तरों में टेंडरम-टेंडरम
ध्यान में टेंडरम, स्वप्न में टेंडरम
जागते टेंडरम, भागते टेंडरम।

खेल में टेंडरम, जेल में टेंडरम
तेल में टेंडरम, सेल में टेंडरम
धुलाई में टेंडरम, सफाई में टेंडरम
कमाई में टेंडरम, गँवाई में टेंडरम।

कोच में टेंडरम, फ्रेट में टेंडरम
रेल के इंजनों में टेंडरम-टेंडरम
रोड में टेंडरम, लोड में टेंडरम
योग में टेंडरम, वियोग में टेंडरम।

ये है आदि टेंडरम, है अनादि टेंडरम
है ये आधि टेंडरम और व्याधि टेंडरम
हो सके न कोई काम, जो न हो टेंडरम
पूर्ण साधना की साँस में समाधि टेंडरम॥

मैं दुनिया को देख रहा हूँ

छूट गया सरकारी दफ्तर
हो तैयार सुबह ही उठकर
कुर्सी टेबुल याद आ रहा
चाय-चक्र में बैठे जमकर।

कहाँ गए वह दिन कजरारे
जिसकी याद करूँ और गाऊँ
अब तो समय कटे न कटता
बात नहीं कोई भी करता
बैठ पार्क में ढूँढ़ रहा हूँ
कोई मिले तो कथा सुनाऊँ।

सारे मंदिर घूम लिया हूँ
संतों से मिल झूम रहा हूँ
बच्चे तो हो गए सयाने
फुर्सत कहाँ उन्हें क्या जाने।

घर आते ही डर लगता है
हर रोज प्रतीक्षा करती थी जो

वही पूछती घर क्यों बैठे
कहाँ चला जाऊँ मैं दिन में
ढूँढ़ नहीं पाया हूँ मंजिल
अंग वस्त्र को बदल-बदल कर।

थक जाता हूँ घर के अंदर
लूँगी धोती पैजामे को
कुर्ता गंजी को सहेजकर
ऐ मेरे भगवान बता दे,
मैं तुझको क्या व्यथा सुनाऊँ?

एक व्यथा तो सुन भी लोगे,
मैं तुझको क्या कथा सुनाऊँ?

ब्लैक मनी

मैंने पूछा अर्थशास्त्र के वेत्ताओं से
'काला धन' क्या होता है मुझको समझाओ
नहीं तो अर्थी उठ जाएगी अर्थशास्त्र की
खाओ, पियो खूब और मजे से मौज मनाओ।

अर्थशास्त्र के पंडित ने मुझको समझाया
बड़ी शान से परिभाषा गढ़कर दुहराया
'ब्लैक मनी' वह मनी, जिसे सरकार नहीं दे
सरकारी आँखों से बचकर छुपा सके जो
खाते-बही कहीं भी नहीं दिखा रखे जो।

इंजीनियर को मिले किन्हीं ठेकेदारों से
डॉक्टर को जो मिले दवा के व्यापारों से
पुलिस प्रशासन को चोरी और गुनहगारों से
सत्ता पर बैठे रहने का सुख,
मिले नजरानों की बयार से।

कोसी का कहर

निर्मली से पश्चिम का गाँव
सरायगढ़ के पूरब का मैदान
बीच में बँधी कोसी की धारा
उफनती, दहाड़ती जवानी
गाँव के स्कूल से पढ़ निकला
शहर के रास्ते निकला देश से दूर
बेटा सयाना हो गया पहुँचा दूर
सिलिकन वैली के महा सेठों की कंपनी
अदल-बदलकर जीविका चला रहा है।

सेठों की दिवाली के दीप जला रहा है
पिछले साल भेजा उसने ढेर रुपये
फूस का घर बन गया पक्की दीवार
ऊपर भी एक कमरा दो मंजिला
अमेरिका से फोन आया उसका
'बापू! नेपाल ने कोशी का पानी छोड़ दिया है'
टीवी कहती कि कोसी नदी में बाढ़ आ गई है।

हमने कहा—"चिंता मत करो
हमने बाढ़ का इंतजाम कर लिया है
मोमबत्ती और दियासलाई दो ही
चाहिए, ताकि बाढ़ आते ही छत पर
चले जाएँ, प्रकाश कर सकें।
छुपाए चिउरे को गुड़ के साथ खा सकें
और आराम से सो सकें
हम और नाग देवता साथ-साथ।"

अरुणाचल की अरुणिमा

जंगलों-पहाड़ों के बीच
धूप-छाँव से बना गाँव
मेहनतकश परिवार
खाते-पीते खेलते-कूदते बच्चे और जवान
सरकारी जीप देखते ही दौड़ जाता है
रोककर किसी ने कहा, "यहाँ विकास होगा–
गाँव का, रोड का और जमीन का।"

सरदार बोला, "हमसे पूछा कि हमें क्या चाहिए?
हम रोड खुद बना लेंगे
जंगल की रक्षा खुद कर लेंगे
तुम अपना सरकारी खजाना वापस ले जाओ
वहाँ शहर में रेल बनेंगे
पानी उतरेंगे
और सरोवर बनेंगे,
ताकि भविष्य की कल्पना करते हमारे जवान
बच्चे वहाँ जाकर आराम करेंगे।"

अरुणाचल अरुण की लालिमा से लाल होगा
हमारा पूरा देश चमक कर बेहाल होगा।
जंगलों, पहाड़ों के बीच
धूप-छाँव से बना गाँव
अपने बल पर निहाल होगा।

बाजार

मैं तो चला था घूमने
कुछ भटकने खातिर
लेकिन देखा था हर तरफ
बाजार का मेला।

कहीं बिजली की रंगत में
चमकता चौंधता चेहरा
कहीं पर शोर-गुल लोगों का
किसी के माथे पर सेहरा।

कहीं चुभती हुई नजरें
कहीं शैशव का सूनापन
कहीं खिलती हुई कलियाँ
कहीं दिखता था अपनापन।

कहीं थी तृप्ति तृष्णा की
कहीं था अधजल प्याला
कहीं विविध तरंगों में
कहीं उत्साह का थैला।

यहाँ सब चीज बिकती है
तेरे दम को परखती है
मुझे भी लौटना था
लौट आया देखकर मेला।

सफर

कब तक चलेगा यह सफर
इस जिंदगी की तलाश में
मैं भटकता ही रहूँगा
हर जगह इसी लिबास में।

दूर कितना आ गया हूँ
धूप में चलते हुए
छाँव मंजिल राह सब
धूमिल हुई ढलते हुए।

मैं सुनहरे बाग से
खिलता हुआ एक फूल ला
देखता था रह गया
पल-पल बना जो शूल-सा।

जब कभी भी जंगलों के
भीड़ में काँटे मिले
भूलता आगे गया,
उस बाग में हम सब मिले

वो बाग जिसमें फूल थे
थी तितलियाँ उड़ मस्त बन
रंग की चादर लपेटे
लिपट पत्तों से चमन।

कमल में छुप गए सब
मेरी नजर है पलाश पर
मैं कहाँ हूँ जा रहा
कब तक चलेगा यह सफर?

अधीनता के स्वर

युग-युगांतर से चला, यह आदमी है खोजता
शांति, सुख, समृद्धि की राहें पलक पर जोहता।
आदमी ही आदमी की नींद लेता जा रहा है
निज अधीन मनुष्य को, करता नियंत्रण जा रहा है।

चाह है खुद को करें स्वच्छंद सारी बेड़ियों से
लड़ रहा हरदम स्वयं, है शेर भूखे भेड़ियों से।
सुख कहाँ मिलता जहाँ परतंत्र की काई जमी है
पराधीन मनुष्य की सब वेदना बेकल थमी है।

तुम सुनहरे ध्यान को संकल्प से साधित करोगे
तब तुम्हारी दक्षता कर्मठ बनेगी और तुम निज-तंत्र होगे।

एक थी दमयंती

मुंबई शहर की चकाचौंध में
लोकल ट्रेन की भीड़ में
चमकता था एक चेहरा
गौर अंग को ढकती पीली साड़ी
नागिन-सी लटकते काले बाल
आँखों में काजल की कजलाहट
और माथे पर लाल बिंदी
जो बदलती थी रंग अपना
सातों दिन सात रूप।

कई साल हो गए मुझे दूर आए
मगर स्मृति-पटल पर जड़ा है वह रूप
खबर मिली एक दिन अरसों बाद
दमयंती नहीं रही इस दुनिया में।

उचट गया मेरा मन
गुस्से-से भर भगवान से पूछा
युवती को ऐसी सजा क्यों?
धरती के लोगों को विरह की चोट क्यों?

पृथ्वी पर चमकता वह सौंदर्य
सबको उदास कर देने वाली खबर।

सूरज की लालिमा-सी लाल बिंदी
मुस्कराता चेहरा और खिलते होंठ
तिरछी नजर और त्रिकुटी भंगिमा
खुद की हँसी से मुझको रुलाती रह गई
एक थी दमयंती।

कस्तूरी

पतली-सी गढ़ी हुई
एक छरहरी देह
सफेद चेहरों पर
सटे हुए दो नयन
खुली आँखों से समेटती मेरा मन
याद आती है।

थिरकते होंठों से फेंकती मुस्कान
आतुर थी लेने को कई जान
कभी शरमाती उसका दृग्वान
कभी बिंदास-सी उसकी तान
याद आती है।

हिरणी-सी आँखों को सजाती हुई
वन के पौधों को अपना अंग लगाती हुई
कामुकता की आग जगाती हुई
अपने सुरभि शब्दों से सबको ललचाती हुई
याद आती है।

अपनी कस्तूरी को खोजती हुई
भटकते मन से दिन-रात
मरीचिकाओं के आर-पार
ढूँढ़ती सुगंधित बयार
याद आती है।

हवा का रुख

चलो उस ओर, जिधर हवा चले
न उसकी दौड़ को रोको, जिधर हवा चले।
बढ़ाओ तुम कदम अपना,
जिधर हवा चले।
उसी के साथ चलते जाओ, जिधर हवा चले।
हवा की रुख को न बदलो,
उसे चलने दो, बहने दो
छिपाए आहटों में बह चलो,
जिधर हवा चले।
तुम्हारा मन, तुम्हारी मंजिलें
बढ़ती ही जाएँगी
हवा की डोर को धर लो
जिधर हवा चले।
हवा से शक्ति लो अपने लिए
वह साथ जाएगी
बने रह जाओ परवाना
जिधर को हवा चले।

जलवायु

तेरे साँसों की हवा में
मिले उन्मुक्त पवन
तेरे बदन में पानी
भटकते आज वन-वन।

तेरे चंचल, उच्छृंखल मन
हैं तोड़े पत्थर के पहाड़
हैं काटे बढ़ते पौधों को,
न सुनते जंगल की दहाड़।

बादल कैसे अब आएगी
बारिश कैसे कर पाएगी,
सूखी धरती क्या खाएगी,
दुनिया क्या जश्न मनाएगी।

तपती धरती दहका देगी
अपनी तापों से जला देगी,
बर्फों से आच्छादित पहाड़
हिमनद बन सभी गला देगी।

हे मानव! इन उपहारों को
समझो जीवन और करो नृत्य
तुम जितना इन्हें बचाओगे
प्रकृति कर लेगी देव कृत्य।

माँ का स्नेह

तुम हमारे हो भविष्यत काल के
सपने सुहाने
जिंदगी मेरी बढ़ी जाती
तुम्हारे ही बहाने।

प्यार की अनुभूति हो तुम
प्राण मेरे साथ तेरा
रक्त से मैंने बनाया
दूध-सा यह पेय तेरा
दर्द सारा सह रही,
इच्छा मगर थी, 'माँ' कहाने
तुम हमारे हो भविष्यत काल...

हर पलक तुमको निहारूँ
जा कलेजे से लगा लूँ
मैं रहूँ भूखी, मगर
लगता तुझे क्या-क्या खिलाऊँ
मैं अकेली मूक हूँ, तुम गए संसार लाने
तुम हमारे हो भविष्यत काल...

सागर, तू मत रोना

इन लंबी-अंधी राहों पर
बहकावे में तुम भटको ना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ
मेरे जीते-जी मत रोना।

यह दुनिया दकियानूसी है
कहीं खुशी, कहीं मायूसी है
सब अपने धुन में झूम रहे,
यह अंध-दौड़ खामोशी है
जो भटक रहे गलियारों में,
उनके आँगन में मत खोना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ...

मेरा घर छोटा है जरूर
फिर भी तुमको देगा गुरूर
खिड़की के आगे आसमान
सूरज, पर्वत, नदियाँ, गरूड़
तेरे पीछे चट्टान हूँ मैं,
तुम दिवास्वप्न में मत सोना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ...

तेरे उर में है चिनगारी
है सुलग रही पावक न्यारी
ज्वाला जब बन जाएगी वह
उठ जाएगी दुनिया सारी
बाधाएँ आएँगी जरूर,
थोड़ा निराश भी मत होना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ...

देखो पेड़ों की झुरमुट से
चिड़िया निकली घोंसला छोड़
दिनभर पाँखों पर उड़ती है
मुड़ गई शाम को घर की ओर
तुम तो इस घर की चिड़िया हो
घूमो धरती का हर कोना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ...

तुम एक बार जब रोया था
परिवार खुशी में खोया था
तेरी सुध में दुनिया खोई
माला में फूल पिरोया था
सागर, तुम छू लो आसमान
खुशियाँ उड़ेल, गम मत ढोना
तेरे आँसू मैं सह न सकूँ...

पुरुषार्थ

जीव हो मानव अगर तो लक्ष्य हो पुरुषार्थ तेरा।
भोगती प्रकृति धरित्री वायु, जल, आकाश सारा।

जोगती, सँजोगती रत्नों को अपने गर्भगृह में
वन, समुंदर और नदियाँ, लहर बन संवेग स्पृह में
वायु बन झकझोरती है, पाद तरुवन के सघन मन
आग की लपटें गगन में बन रही है दीप्त तारा।
जीव हो मानव अगर...

स्वर्ण-सी किरणों से प्लावित, कर दिया अमिताभ रंजित
सप्त अश्वों को सँभाले, सिंधु के जल को तरंगित
विश्व में यह सिलसिला, जीवन-मरण चलता रहेगा
पर तेरा पुरुषार्थ जनहित में गढ़ेगी पुण्य सारा
जीव हो मानव अगर...

ज्ञान से, विज्ञान से, पुलकित प्रकृति को चूमता-सा,
गीत और संगीत तारों से निकाले, झूमता-सा,
मोह से प्रकृति पुकारे, लोभ, मद मन में उतारे
नग्न नयनों से निकाले, अश्रु की अविरल-सी धारा।
जीव हो मानव अगर...

ईश ने है जीव लाया, जीव ने ईश्वर बनाया
ढूँढ़ता अविरल रहा हूँ, कौन-सी है दृष्टि माया?
मैं मगर ममता-भरी, माँ को सजाए पूजता हूँ
शक्ति से, विश्वास से, और प्यार से तुझको पुकारा।
जीव हो मानव अगर...

उच्छ्वास

मैं धरा की वेदना को
सह नहीं हूँ पा रहा,
कर नहीं कुछ सक रहा,
पर मूक बन दर्शक रहा।

तेज सूरज की तरंगें
तापती धरती सतह की
वायु के उत्तुंग झोके
फेंकती ठंडी लहर को।

मैं समुंदर के किनारे
भागता जब लहर गिनने
पा लिया संपूर्ण सुख
भू, नभ, जलाशय, वायु के नव।

लक्ष्य, मेरा चाँद

ओ मेरे चाँद! कितनी दूर तक,
मुझको चला डाला?
बहुत बेसुध हुआ था मैं,
वो मेरा सुध गला डाला।

चमकता गोल-सा उजला
था तारों से घिरा आँगन
पिता की उँगली पकड़े हुए
मैं बढ़ चला तन-मन।
न देखा राह के काँटे,
जो पर्वत ने लगा डाला, ओ मेरे चाँद...

जो थक जाता तो वे कहते
'है थोड़ी दूर ही बाकी'
कहाँ से जोश पाता हूँ मैं
न जाना कौन बैशाखी,
मगर था होश अंदर में
जो दुविधा को जला डाला, ओ मेरे चाँद...

पहुँच जाऊँ मैं मंजिल तक
यही मैं सोचता आया,
मगर मंजिल थी जो बढ़ती गई
पर मैं न कुछ भी कर पाया
क्षितिज पर पर्वतों को आसमाँ से भी मिला डाला
ओ मेरे चाँद...

बेटी की पुकार

तूने मुझको जन्म दिया है
मैं तुझको न छोड़ सकूँगी।

मेरी मम्मी, मेरे पापा,
तुम दोनों क्यों बिछुड़ रहे हो?
मुझे बाँट कैसे पाओगे
क्यों तुम दोनों बिखर रहे हो?

मम्मी! तू तो अंग लगाकर,
दूध पिलाते सुला रही थी
प्यारे-प्यारे गीत और
लोरी की पाँती सुना रही थी।

पापा ने कंधे पर लादा
कभी उँगली पकड़ घुमाया;
गाड़ी से स्कूल दिखाया,
शाम पार्क में खूब झुलाया।

मेरी यादों में तुम दोनों
कैसे तुझको भूल सकूँगी।
तूने मुझको जन्म दिया है।

कुछ ही साल अभी बाकी है,
फिर तो मैं पर घर जाऊँगी;
तुम दोनों तो छूट जाओगे,
मैं विरहा के गीत गाऊँगी।

तुम दोनों के बिना कहो ना
मैं क्या दुनिया जोड़ सकूँगी?
तूने मुझको जनम दिया है,
मैं तुमको न छोड़ सकूँगी।

विश्वजीत का अर्धशतक

गुजरा है अर्धशतक पल-पल
जीवन में कितने गीत गढ़े
ये पाँच दशक के उच्च शिखर
कितने उमंग उत्साह भरे।

हे विश्वजीत, विष्णु स्वरूप
पुरुषार्थ तुम्हारे रग-रग में
जीवन-पथ पर चल रहे निरत
ऊर्जा उमंग हो, पग-पग में।

इस जन्म दिवस पर शतकों की
कामना अभी कर लेते हैं
आनंदित हो जीवन तेरा
हम आज बधाई देते हैं।

पानी की धारा

पानी की धारा बहती है
तुम बहे चलो, तुम बहे चलो
अपने तट से देखो जग को,
अपने बल पर, तुम बढ़े चलो।

ये धरती, नदिया, चाँद और,
सूरज नभ में हैं घूम रहे
तुम जहाँ कहीं भी रहो वहाँ
प्यारी नजरों से चूम रहे।

तेरी धरती, तेरा अंबर
तेरा ही दिल बहलाएँगे
सूरज की किरणें और पवन
तेरे तन को सहलाएँगे।

खेलो, कूदो और काम करो,
नाचो, गाओ इस आँगन में
पर इसे बचाकर रख लेना
झूमो मिलकर इस प्रांगण में।

किसने यह स्वर्ग उठा लाया

धरती, पानी, आकाश, पवन
है हवा चली उपवन-उपवन
बगिया में फूल खिले सुंदर
हम बैठे हैं घर के अंदर।

तितली के पंख पतंग बने
भँवरे उड़ते हैं तने-तने
बारिश की बूँदें गिरती हैं
धरती-अंबर है साथ बने।

है कितना प्यारा दिन आया
किसने यह स्वर्ग उठा लाया!

शरद की वह रात

शरद की वह रात,
चाँदनी के साथ
श्वेत अमृत गिर रही है
मेघ से बरसात।
शरद की वह रात...

धरा धाम प्रसन्न है
सब शस्य मोती धान
शुभ्र ज्योति जला रहा
है दूर बैठा चान।
मंद पवन सिसक रहा था
छू के कोमल गात
शरद की वह रात
स्वर्ग जैसे उतर आया,
तमस की न कोई छाया;
खेत हरियाली में डूबी
कृषकवृंद ने गीत गाया।

रात भर हम घूमते,
न अंत हो कोई बात।
शरद की वह रात।

कृष्ण की मुरली बजी
राधा के नृत्य का तान
प्रेम के जोड़े लुटाते
पान और मखान।
मछलियाँ हैं कूदती
मल्लाह जागे रात
शरद की वह रात।

नमन हिंदी को

नमन करूँ अपने भारत को,
नमन आत्मसम्मान की
कितनी सुंदर भाषा है यह
हिंदी हिंदुस्तान की।

भारतेंदु ने इसे बनाया,
जयशंकर ने इसको गाया
प्रेमचंद की नीव पड़ी
मैथिलीशरण ने इसे बढ़ाया
दिनकर की हुंकार उठी
नागार्जुन के अभियान की।
कितनी सुंदर भाषा...

हाली और इकबाल ने सींचे
इस धरती पर रंग उलीचे
फारस से उर्दू को लाकर
भारत की धरती को सींचे।
उर्दू सखी बनी हिंदी की
ज्ञान, एकता, ध्यान की।
कितनी सुंदर भाषा...

सूर, कबीर और तुलसी की
गाथा नानक औ' रहीम की
मीरा का मदमस्त नृत्य
और सुर सुंदर रसखान की।
कितनी सुंदर भाषा...

अवधी, ब्रज, बुंदेलखंड की
भोजपुरी, मैथिली छंद की
सारे रस बन गए सोमरस
गरिमा है गुणगान की।
कितनी सुंदर भाषा...

इसे नहीं झुकने देंगे हम
इसे नहीं रुकने देंगे हम
जब तक रहे तिरंगा प्यारा
हिंदी लहरे प्राण की।
कितनी सुंदर भाषा...